The Knowledge Spectrum: An International Peer-Reviewed Multidisciplinary Journal
ISSN: 3107-3557 (Online)

52

भारतीय ज्ञान परंपरा में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

Nisha Premchand Pasi
Research Scholar
Gujarat University Ahmedabad, Gujarat

सारांश:

भारतीय ज्ञान परंपरा मानव सभ्यता की सबसे प्राचीनतम समृद्ध परंपराओं में से एक है, जिसने दर्शन, विज्ञान, ज्योतिष, साहित्य, कला और आध्यात्म जैसे विविध पहलुओं को अपने-आप में समाहित किया है। वेदों से प्रारंभ हुई यह परंपरा दर्शनशास्त्र, उपनिषद, आयुर्वेद, खगोलशास्त्र से लेकर महाभारत, रामायण और पुराण जैसे महाकाव्यों तक विशाल वटवृक्ष की भांति प्रसारित हुई है। भारतीय साहित्य का संस्कृत कालीन युग हो या मध्यकालीन हिंदी साहित्य या फिर आधुनिक हिंदी साहित्य इन सभी पर भारतीय ज्ञान परंपरा की गहन चिंतनधारा का प्रभाव दिखलाई देता है। आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रमुख रचनाकार जैसे प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, और महादेवी वर्मा ने भारतीय ज्ञान परंपरा को अपनी रचनाओं में प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है। आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रथम श्रेणी के रचनाकारों में से एक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी है। इनकी रचनाओं में भारतीय संस्कृति, इतिहास और परंपरा का गहन चिंतन प्रदर्शित होता है। आचार्य द्विवेदी की रचनाओं में भारतीय संस्कृति का स्वरूप विभिन्न रूपों में प्रकट होता है। उनके उपन्यासों, निबंधों और आलोचनात्मक कृतियों में संस्कृति के ऐतिहासिक, सामाजिक और दार्शनिक पक्षों को गहराई से उभारा गया है। उनकी प्रसिद्ध कृति 'अनामदास का पोथा' में भारतीय समाज के दार्शनिक और आध्यात्मिक पहलुओं का सजीव चित्रण मिलता है। आचार्य द्विवेदीजी की सांस्कृतिक चेतना का अलौकिक पक्ष उनकी औपन्यासिक रचनाओं में भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है। आचार्य द्विवेदी अपनी औपन्यासिक कृतियों में प्राचीन तथा मध्यकालीन भारत के व्यापक वाङ्मय को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करते हुए उसे वर्तमान से इस प्रकार जोड़ते हैं कि पाठक इतिहास की उज्ज्वल और गौरवमयी संस्कृति में अपनी समस्याओं और विडंबनाओं का समाधान खोजने में सक्षम हो जाता है।

बीज शब्द :

दर्शन, विज्ञान, ज्योतिष, साहित्य, कला, आध्यात्म, वटवृक्ष, दिशासूचन, चिंतनधारा, सौंदर्यशास्त्र, रसमयता, अनुप्राणित, गत्यात्मक, सहृदयता, सुग्राह्य, पुनर्वेक्षण, आत्मिक उत्थान, पुनः स्थापना

प्रस्तावना :

भारतीय ज्ञान परंपरा मानव सभ्यता की सबसे प्राचीनतम समृद्ध परंपराओं में से एक है, जिसने दर्शन, विज्ञान, ज्योतिष, साहित्य, कला और आध्यात्म जैसे विविध पहलुओं को अपने-आप में समाहित किया है। वेदों से प्रारंभ हुई यह परंपरा दर्शनशास्त्र, उपनिषद, आयुर्वेद, खगोलशास्त्र से लेकर महाभारत, रामायण और पुराण जैसे महाकाव्यों तक विशाल वटवृक्ष की भांति प्रसारित हुई है। यह परंपरा धार्मिक तथा दार्शनिक दृष्टिकोण से मानव को समृद्ध ही नहीं बनाती अपितु मानवजीवन के हर क्षेत्र में दिशासूचन का भगीरथ कार्य करती है। वस्तुतः मानवजीवन से जुड़े प्रत्येक क्षेत्र में

भारतीय ज्ञान परंपरा अपना योगदान देती है। मानवीय सभ्यता तथा जीवन से जुड़ा एक अभिन्न हिस्सा साहित्य भी है, जिस पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इस परंपरा का प्रभाव दिखता है।

भारतीय साहित्य का संस्कृत कालीन युग हो या मध्यकालीन हिंदी साहित्य या फिर आधुनिक हिंदी साहित्य इन सभी पर भारतीय ज्ञान परंपरा की गहन चिंतनधारा का प्रभाव दिखलाई देता है। आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रमुख रचनाकार जैसे प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, और महादेवी वर्मा ने भारतीय ज्ञान परंपरा को अपनी रचनाओं में प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है। उनकी रचनाओं में भारतीय संस्कृति, इतिहास और परंपरा का गहन चिंतन समाहित है। उदाहरण के लिए, महादेवी वर्मा की कविताओं में भारतीय दर्शन और सौंदर्यशास्त्र का अद्भुत समावेश देखने को मिलता है।

आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रथम श्रेणी के रचनाकारों में से एक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी है। इनकी रचनाओं में भारतीय संस्कृति, इतिहास और परंपरा का गहन चिंतन प्रदर्शित होता है। आचार्य द्विवेदी का साहित्यिक रचनासंसार बहुआयामी, बहुपक्षीय तथा विस्तृत है। मृदुला पारीक के शब्दों में कहा जाए तो "उन्होंने साहित्य की जिस विधा को छुआ है, उसे चिंतन की गहराई एवं सर्जना की रसमयता से अनुप्राणित करके उत्कृष्ट साहित्य की सृष्टि की है।"[1] इन्होनें कविता, उपन्यास, आलोचना, निबंध, इतिहासलेखन आदी विधाओं में अपना योगदान दिया है।

आधुनिक हिंदी साहित्य के छायावादोत्तर काल के सबसे महत्वपूर्ण निबंधकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी है। हिंदी निबंध साहित्य को समृद्ध बनाने में द्विवेदीजी का अतुलनीय योगदान रहा है। इनके प्रमुख निबंध संग्रह 'अशोक के फूल' (1948), 'विचार और वितर्क' (1949), 'कल्पलता' (1954), 'विचार और प्रवाह' (1959), 'कुटज' (1964) 'आलोकपर्व' (1972) इत्यादि है। द्विवेदीजी अपने निबंधों में समकालीन जीवन के प्रश्नों तथा समस्याओं का उत्तर प्राचीन भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति के संदर्भ में प्रस्तुत करते हैं। उन संदर्भों में दर्शन, इतिहास तथा संस्कृति जैसे मानव जीवन के विविध पक्ष जुड़ते है। हिंदी निबंध साहित्य को समृद्ध बनाने में द्विवेदीजी ने अमुल्य योगदान दिया है। द्विवेदीजी अपने निबंधों में समकालीन जीवन के प्रश्नों तथा समस्याओं का उत्तर प्राचीन भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति के संदर्भ में प्रस्तुत करते हैं। उन संदर्भों में दर्शन, इतिहास तथा संस्कृति जैसे मानव जीवन के विविध पक्ष जुड़ते है। इस संबंध में डॉ. बच्चन का कथन है कि "द्विवेदी जी का व्यक्तित्व लचीला और निरंतर विकासमान है। देश की नयी-से-नयी गत्यात्मक विचारधारा से वे अपने को ही जोड़ लेते हैं और इस प्रकार अपनी ऐतिहासिक दृष्टि को नये सिरे से समंजित करते रहते हैं। विद्वता और सहृदयता का जो संयोग उनके निबंधों में मिलता है, वह सामान्यतः विरल होता है।"[2] द्विवेदी जी गंभीर से गंभीर तथ्य को भी हास्य-व्यंग्य का पुट प्रदान कर प्रस्तुत करते है। परंतु आश्चर्य की बात यह है, कि इस पद्धति से वे अपने विचारों की गंभीरता को कम नहीं होने देते अपितु उसे सुग्राह्य बनाकर प्रस्तुत करते हैं।

आचार्य द्विवेदी की रचनाओं में भारतीय संस्कृति का स्वरूप विभिन्न रूपों में प्रकट होता है। उनके उपन्यासों, निबंधों और आलोचनात्मक कृतियों में संस्कृति के ऐतिहासिक, सामाजिक और दार्शनिक पक्षों को गहराई से उभारा गया है। उनकी प्रसिद्ध कृति 'अनामदास का पोथा' में भारतीय समाज के दार्शनिक और आध्यात्मिक पहलुओं का सजीव चित्रण मिलता है। इस उपन्यास में लेखक ने ज्ञान और साधना के माध्यम से यह दिखाया है कि भारतीय संस्कृति में धर्म और अध्यात्म का कितना गहरा महत्व है। उनका निबंध संग्रह 'अशोक के फूल' भारतीय इतिहास और संस्कृति का एक ऐसा दर्पण है, जिसमें समाज की कमजोरियों और शक्तियों का सजीव वर्णन मिलता है। इस संग्रह में उन्होंने भारतीय समाज के भीतर छिपी उन मान्यताओं और मूल्यों को सामने रखा है, जो इसे सहिष्णु और लचीला बनाते हैं। उनके लेखन में भारतीय संस्कृति की कोमलता और उसकी गहनता का वर्णन फूलों की सौंदर्यता के माध्यम से किया गया है।

द्विवेदी जी की रचना 'कुटज' में प्रकृति और भारतीय संस्कृति के बीच के गहरे संबंध को दर्शाया गया है। यह रचना यह समझने में मदद करती है कि कैसे भारतीय परंपराओं ने प्रकृति को हमेशा सम्मान दिया है, और उसे जीवन का अभिन्न अंग माना है। उनके लेखन में बार-बार यह विचार सामने आता है, कि भारतीय संस्कृति न केवल मनुष्य के भौतिक जीवन को समृद्ध करती है, बल्कि उसके आध्यात्मिक विकास का भी मार्ग प्रशस्त करती है।आचार्य द्विवेदी की आलोचनात्मक कृति 'हिंदी साहित्य का आदिकाल' भारतीय साहित्य और संस्कृति के गहरे संबंध को रेखांकित करती है। इसमें उन्होंने यह दिखाया है कि कैसे साहित्य भारतीय संस्कृति का प्रतिबिंब है, और किस तरह यह समाज में संस्कृति के प्रसार और संरक्षण का माध्यम बनता है।द्विवेदी जी की रचनाओं में भारतीय संस्कृति का आधुनिक संदर्भ भी मौजूद है। वे मानते थे कि समय के साथ परंपराएँ बदलती हैं, लेकिन उनकी आत्मा स्थायी रहती है। उनकी रचनाएँ इस बात का उदाहरण हैं कि भारतीय संस्कृति कैसे आधुनिकता को स्वीकार कर सकती है और अपनी मौलिकता को बनाए रख सकती है। द्विवेदी जी अवश्य ही दर्शन, अध्यात्म तथा इतिहास के प्रखर ज्ञाता रहे हो, किंतु उनका वर्तमान की समस्याओं से सदैव ही परिचित रहें साथ ही साथ भविष्य की परिस्थितियों के पदचाप भी उन्होंने सुन लिए थे। कदाचित् इसीलिए आगामी मानव संतति हेतु उन्होनें यह सुझाव दिया- "आज हम सांस्कृतिक दृष्टि से जो बहुत नीचे गिर गए हैं, उसका प्रधान कारण यही है, कि हम इस महान आदर्श को भूल गए हैं। मेरा विश्वास है कि इन आदर्शों को नई परिस्थितियों के अनुकूल बनाकर ग्रहण करने से हम तो उपर उठेंगे ही, सारे संसार को भी उसमें कुछ-न-कुछ ऐसा अवश्य मिलेगा, जिससे उसे वर्तमान प्रलयकंर अवस्था से उबरने का मौका मिले।"[3] द्विवेदी जी का यह कथन सम्पूर्ण मानव समाज की सभ्यता एवं संस्कृति की सुरक्षा व संवर्धन का माध्यम बन सकता है। भारत की ज्ञान परंपरा ने सम्पूर्ण विश्व के मानव समाज को कला, साहित्य, दर्शन या आध्यात्म के माध्यम से श्रेष्ठतम् समाज की रचना के लिए प्रेरित किया है।

आचार्य द्विवेदीजी की सांस्कृतिक चेतना का अलौकिक पक्ष उनकी औपन्यासिक रचनाओं में भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है। आचार्य द्विवेदी अपनी औपन्यासिक कृतियों में प्राचीन तथा मध्यकालीन भारत के व्यापक वाङ्मय को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करते हुए उसे वर्तमान से इस प्रकार जोड़ते हैं कि पाठक इतिहास की उज्ज्वल और गौरवमयी संस्कृति में अपनी समस्याओं और विडंबनाओं का समाधान खोजने में सक्षम हो जाता है। उनकी लेखनी का यह अद्भुत पक्ष पाठकों को न केवल प्रेरित करता है, बल्कि उन्हें आत्ममंथन की ओर भी उन्मुख करता है। उनकी कृतियों में भारतीय संस्कृति का ऐसा अनुपम चित्रण मिलता है जो केवल अतीत की महत्ता का बखान नहीं करता, बल्कि वर्तमान के संदर्भ में उससे दिशा और समाधान प्राप्त करने का मार्ग भी प्रशस्त करता है। उनकी रचनाओं के माध्यम से पाठक भारतीय ज्ञान परंपरा और उसकी स्थायी प्रासंगिकता को समझते हुए उसमें निहित मानवीय मूल्यों को आत्मसात कर लेता है। इस प्रकार आचार्य द्विवेदीजी साहित्य के माध्यम से सामाजिक चेतना जागृत करने वाले एक कुशल मार्गदर्शक सिद्ध होते हैं।

आचार्य द्विवेदीजी का प्रथम उपन्यास बाणभट्ट की आत्मकथा हर्षकालीन भारत के प्रसिद्ध कवि बाणभट्ट के जीवन सूत्रों को आधार बनाकर लिखा गया है। "'नरलोक से किन्नरलोक तक व्याप्त एक ही रागात्मक हृदय' के विविध संदर्भों की खोज एवं 'सुख-दुख की लाख-लाख धाराओं में अपने आपको द्राक्षा के समान निचोड़कर दूसरों को तृप्त करने की' महती भावना से परिचालित 'आत्मकथा' इतिहास का कलात्मक पुनरासृजन है।"[4] बाणभट्ट की आत्मकथा की समीक्षा में लिखे गए मृदुला पारीक के ये शब्द कदाचित् गागर में सागर भरने की अप्रतिम क्षमता दर्शाते हैं। मध्यकालीन भारत के सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक परिवेश का यथार्थ चित्रण करता हुआ आचार्य द्विवेदीजी का

दूसरा उपन्यास चारुचंद्रलेखा केवल एक कथानक ही नहीं अपितु एक युग-दर्पण भी है। मृदुला पारीक इस कृति की समीक्षा करते हुए लिखती हैं, "मध्यकालीन तंत्र साधना एवं राष्ट्र-रक्षा के ताने-बाने पर बुनी गई द्विवेदीजी की यह द्वितीय औपन्यासिक कृति अतीत के पुनर्वेक्षण में वर्तमान के प्रासंगिकता और भविष्य के संधान का सृजनात्मक प्रयास कही जा सकती है।"[5] ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित यह उपन्यास तंत्र विद्या, बौद्ध तथा हिंदू धर्म की गहन आध्यात्मिक विचारधारा को दर्शाता है। इसकी नायिका राजनैतिक षड्यंत्रों और हिंसा से निराश होकर अध्यात्म के मार्ग पर चलती हुई मुक्ति पाने का प्रयास करती है। आचार्य द्विवेदीजी की रचनाएँ केवल साहित्यिक उपन्यास नहीं हैं, बल्कि इतिहास, धर्म और दर्शन का समन्वय करते हुए एक गहरे जीवन-दर्शन को प्रस्तुत करती हैं। इन कृतियों का मूल उद्देश्य न केवल पाठकों को मनोरंजन प्रदान करना है, बल्कि उन्हें भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों और आत्मिक उत्थान की दिशा में प्रेरित करना भी है।

आचार्य द्विवेदीजी का 'पुनर्नवा' चौथी शताब्दी के गुप्तकाल के परिप्रेक्ष्य में लिखा गया तीसरा उपन्यास है। सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था एवं मानवीय मूल्यों को केंद्र में रखकर लिखा गया यह उपन्यास द्विवेदीजी की सांस्कृतिक इतिहास के प्रति कलात्मक सर्जन शक्ति को प्रस्तुत करता है। स्थापत्यकला, चित्रकला, मूर्तिकला, नृत्यकला तथा संगीतकला से परिपूर्ण गुप्तकाल के भारतीय समाज एवं संघर्षशील राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण द्विवेदीजी ने इस उपन्यास में किया है। द्विवेदीजी का चौथा उपन्यास 'अनामदास का पोथा' प्रागैतिहासिक काल अर्थात् उपनिषद् काल के संदर्भ में लिखी गई कृति है। इस काल में वैदिक समाज में व्याप्त आर्य-आर्येतर, ब्राह्मण-ब्राह्मणेतर संघर्ष के द्वारा तत्कालीन परिस्थितियों का विवरण देने का प्रयास इस उपन्यास में किया गया है। इस ग्रंथ की समीक्षा में मृदुला पारीक लिखती हैं, "उपनिषदिक चिंतन को लोकाभिमुख करने के इरादे से सर्जित कथा का उद्देश्य है कथानायक रैक्व का चरित्र विकास। ऐसे नायक का चरित्र विकास, जो बेखबर है-दीन-दुनिया से, समाज से, स्त्री-पुरुष के भेद से, अपने-आपसे भी बेखबर, पूर्णतः आत्मलीन, एकदम जंगल का जीव। अपने इसी प्रयास में समग्र कथानक को बीस (20) खंडों में विभाजित कर, तमाम अवांतर प्रसंगों, घटना संयोगों एवं भिन्न-भिन्न पात्रों के क्रिया-व्यापारों द्वारा उपन्यासकार इस व्यक्तिचरित्र का विकास करता चला गया है।"[6] यह उपन्यास सांस्कृतिक दृष्टि से गहराई लिए हुए है। इसमें भारतीय समाज की समस्याओं, विशेषकर सांस्कृतिक और आध्यात्मिक संकटों का समाधान भारतीय परंपरा और दर्शन के माध्यम से दिया गया है। लेखक ने इसमें न केवल समाज के नैतिक पतन की बात की है, बल्कि सांस्कृतिक पुनरुत्थान के मार्ग भी सुझाए हैं। कथानक का केंद्रीय विचार यह है कि जीवन एक अनंत यात्रा है, जिसमें मनुष्य अपने अनुभवों और ज्ञान के आधार पर सत्य की खोज करता है। उपन्यास के पात्र और घटनाएँ पाठकों को जीवन के गहन सत्य और दर्शन से जोड़ते हैं। यह कृति भारतीय समाज में सांस्कृतिक जागरूकता और नैतिक मूल्यों की पुनः स्थापना का आह्वान करती है।

संदर्भ सूची :

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी सर्जक और चिंतक, मृदुला पारीक, पार्श्व पब्लिकेशन, (निवेदन से)
2. हिंदी साहित्य का इतिहास, सं. डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल, मयूर बुक्स, पृ. 757
3. अशोक के फूल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, सस्ता साहित्य मण्डल, पृ. 90
4. हजारी प्रसाद द्विवेदी सर्जक और चिंतक, मृदुला पारीक, पार्श्व पब्लिकेशन, पृ. 17
5. वही, पृ. 56
6. वही, पृ. 131